मीडिया और सिनेमा

फ़िल्मकार श्याम बेनेगल का हिन्दी सिनेमा में योगदान एक अध्ययन

मनीष कुमार जैसल

भूमिका

अंग्रेजी शासकों नें भारत को दो टुकड़ों में बांटकर 15 अगस्त 1947 के दिन आनन-फानन में स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया। देश के बँटवारे का दुख और उससे पड़ने वाली दीर्घकालीन आर्थिक सामाजिक अव्यस्थाओं के प्रति खास अफसोस नहीं करते हुए उन दिनों अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने वाले स्वतंतत्रता सेनानियों ने देश की बागडोर अपने हाथों मे ले ली।

आज़ादी के बाद गांधी जी ने ब्राह्मणों द्वारा समाज के सबसे निचले स्तर पर जीने को मजबूर दलितो को हरिजन कह संबोधित किया और उनके लिए समानता की वकालत भी की। गांधी जी के कुछ अनुयायी इस प्रथा को विस्तारित करना तो चाहते थे किन्तु कुछ कट्टर हिन्दू इस प्रकार के सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। कौन अपनी बसी बसाई दुनियाँ उजाड़ना चाहेगा। इनके अनुसार व्यक्ति का वर्ण उसके पूर्व जन्मों के किए गए कर्मों के आधार पर ही प्राप्त होता है। उधर बौद्ध धर्म और दलितों के मसीहा भारत रत्न बाबा साहब अंबेडकर ने समाज के दबे कुचले लोगो के लिए आवाज उठाई और पूरा जीवन कुर्बान किया। बाबा साहब ने गांवों को भारतीय गणतन्त्र की अवधारणा का शत्रु माना था। वो कहते थे कि हिंदुओं की ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांवों में ही होता है। उनके अनुसार भारतीय गाँव हिन्दू व्यवस्था के कारखाने है। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद के साक्षात दर्शन हो सकते हैं। देश को आज़ादी मिली, गांवों के हालत में कुछ बदलाव तो आया किन्तु पूँजीपतियों द्वारा दलितों के शोषण की कहानी अभी खत्म होने का नाम नहीं ले रही थी, विशेषकर दक्षिण भारत इसमे अव्वल था।

आज़ादी के बाद के सिनेमा में कई निर्देशकों ने इन्ही समस्याओं को लेकर अपनी बात कहने की पुरजोर कोशिश भी है। धर्मात्मा, चंडीदास, अछूत कन्या, अर्पण, सुजाता, जैसी अनेक फिल्में भारतीय ग्रामीण समाज की संवेदना को व्यक्त तो करती है पर उस तरह नहीं जैसाकि इतिहास में हमे पढ़ने और सुनने को मिलता है। सिनेमा माध्यम के जरिये 70 के दशक में एक ऐसा फ़िल्मकार ऐसे विषयों पर आधारित फिल्में हमें दिखाता है जिन दिनों हम 'एंगरी एंग मैन' यानि अमिताभ बच्चन की घोर व्यावसायिक फिल्में देख रहे थे। वह फ़िल्मकार श्याम बेनेगल हैं।

श्याम बेनेगल: एक परिचय

हिंदी फिल्म के इतिहास में अंकुर, निशांत, मंथन और भूमिका ऐसी ही फ़िल्में सुनहरे अक्षरों में दर्ज हैं जो व्यावसायिक सफलता की मोहताज नहीं हैं। इन फिल्मों ने भारतीय सिनेमा में एक नए आयाम को जन्म दिया। जिसे समानांतर सिनेमा या कला सिनेमा कहा गया। भारतीय फिल्म उद्योग में इस नयी धारा की अगुवाई फ़िल्मकार श्याम बेनेगल की, बेनेगल ने ही इन चारों फिल्मों का निर्देशन किया हैं। इन फिल्मों ने भारतीय सिनेमा को ऐसी राह दिखाई जो देशी और विदेशी दोनों वर्ग के फिल्म दर्शकों में एक अलग पहचान बनी। ये फिल्में आज भी लोगो को एक नए नजरिए से देखने को प्रेरित करती है।

हैदराबाद के सिकंद्राबाद में एक ब्राह्मण परिवार में 14 दिसंबर 1934 को जन्मे श्याम बेनेगल ने सिर्फ 12 साल की उम्र में फिल्म बनाई तो उनके फोटोग्राफर पिता श्रीधर बेनेगल उनके साथ हर कदम पर खड़े हुए। 1959 में बतौर कॉपीराईटर के रूप में

अपने कैरियर की शुरुआत करने वाले बेनेगल ने फिल्म निर्माण से पहले कई डाक्यूमेंट्री (लघु फ़िल्में) बनाई जिनमें 1962 में आई उनकी पहली डाक्यूमेंट्री फिल्म घेर बेठा गंगा (गंगेज इट डोरस्टेप्स) की जो गुजराती भाषा में थी । यह फिल्म खूब सराही गयी । 1966 - 1973 तक पुणे एफटीआईआई में छात्रों को फिल्म निर्माण के बारे में भी पढाया । 1973 में आई फिल्म अंकुर को 1975 में बेनेगल और शबाना आजमी दोनों को राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया । उन्होंने यह भी बताया कि फिल्म निर्माण से पहले जो तपस्या की उसका फल अंकुर के रूप में आया । 1976 में इन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया ।

1983 में शाम बेनेगल ने वयस्कों की कहानी पर एक फिल्म 'मंडी' बनाई और आलोचकों को मुह तोड़ जवाब भी दिया शबाना आजमी, स्मिता पाटील और कुलभुषण खरबंदा जैसे कलाकारों से अभिनीत यह फिल्म आज भी खूब पसंद की जाती हैं । 1985 में बनी फिल्म 'त्रिकाल' के लिए श्याम बेनेगल को बेस्ट डायरेक्टर का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला । 1992 में धर्मवीर भारती के प्रसिद्ध उपन्यास सूरज का सातवां घोडा पर इसी नाम से इन्होने फिल्म बनाई । इस फिल्म में राजित कपूर, राजेश्वरी सचदेव, पल्लवी जोशी, नीना गुप्ता और अमरीश पूरी जैसे कलाकारों ने काम किया था ।

1990 के दशक में जब फिल्मों पर आधुनिकता हावी हुई तो समानांतर सिनेमा के दर्शक कम होते गये, पर बेनेंगल रुके नहीं । इसी बीच उन्होंने मम्मो, सरदार बेगम जैसी अर्थपूर्ण फ़िल्में बनाई । परंतु 2001 में आई फिल्म जुबैदा से उन्होंने यह दिखने की कोशिश की कि वे इस नये युग में समानांतर सिनेमा बना सकते हैं । जिसमें कुछ व्यावसायिकता भी हो । एक समय ऐसा आया कि इन्हे आलोचकों ने घेरना शुरू कर दिया । फिल्म त्रिकाल को देखने के बाद कुछ लोगों ने यह कहना शुरू किया कि श्याम बेनेगल सिर्फ अवार्ड की लिए फिल्म बनाते हैं, पर श्याम बेनेगल ने बिना इस पर कोई प्रतिक्रिया दिए हुए अपना कार्य बदस्तुर जारी रखा ।

सामाजिक सरोकार और हिन्दी सिनेमा

भारतीय सिनेमा के सौ वर्षों के इतिहास में हिंदी फिल्मों ने भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सरोकारों को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । हिंदी फिल्मों में मनोरंजन के साथ-साथ भारतीय जीवन के विविध पहलुओं को बदलते परिवेश में चित्रित करने में सफलता हासिल की है । हिंदी फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता जीवन में व्याप्त हर तरह की संवेदना को दर्शाना रहा है । भारत में सिनेमा शुरुआत से ही इस माध्यम का प्रयोग फिल्म फ़िल्मकारों ने देश में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जगाने के लिए किया। हिंदी फिल्में (भारतीय फिल्में) मूलत: संगीत प्रधान रहीं हैं । गीत और संगीत के बिना हिंदी फिल्मों की कल्पना नहीं की जा सकती । हिंदी फिल्मों को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक धरातल पर पृथक कर उनमें व्याप्त विभिन्न सरोकारों को विश्लेषित किया जा सकता है । आज़ादी से पहले की फिल्मों के मुख्य विषय स्वतन्त्रता संग्राम, अंग्रेजी राज से मुक्ति के प्रयास और देशभक्त वीरों के बलिदान की कथाओं पर आधारित रहे।

पचास के दशक को हिन्दी सिनेमा का स्वर्ण काल कहा जाता है । इसका सबसे बड़ा कारण है - फिल्मों और फ़िल्मकारों की सामाजिक प्रतिबद्धता । सामाजिक समस्याओं के प्रति एक ईमानदार संवेदनशीलता और उन समस्याओं का समाधान तलाशने की एक ललक जिसे वे दर्शकों में जागरूकता पैदा कर हासिल करना चाहते थे। उन दिनों फिल्म निर्माण का एक मात्र उद्देश्य व्यावसायिकता नहीं हुआ करती थी । सामाजिक सरोकारों से जुड़े सशक्त कथानक, संदर्भानुकूल गीत, कर्णप्रिय मधुर संगीत और एक संदेशात्मक सुखद अंत के साथ फिल्में लोगों को आकर्षित करती थीं। निर्माताओं की दृष्टि केवल आर्थिक लाभ पर ही न होकर समाज के लिए स्वस्थ मनोरंजन जुटाने की ओर भी हुआ करती थी । ऐसे फ़िल्मकारों में सोहराब मोदी, पृथ्वीराज कपूर, वी शांताराम, कमाल अमरोही, गुरुदत्त, विमलराय, महबूब खान, नितिन बोस, ताराचंद बड़जात्या, बी आर चोपड़ा, चेतन आनंद, देव आनंद, विजय आनंद, मनोज कुमार हमेशा याद किए जाएंगे ।

आज के दौर में गोविंद निहलानी, श्याम बेनेगल, अनुराग कश्यप, आशुतोष गावरीकर, यश चोपड़ा, प्रकाश झा आदि नाम उद्देश्यमूलक सामाजिक सरोकारों की लोकप्रिय फिल्मों के निर्माण के लिए पहचाने जाते हैं। यदि भारतीय सिनेमा की समग्रता में बात की जाए, तो बंगाल में सत्यजित राय और ऋत्विक घटक ने पचास के दौर में भारतीय समाज के वंचित जनसमूहों के जीवन और उनकी आकांक्षाओं पर फिल्में बनाकर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। इस दशक में आने से ठीक पहले 1946 में चेतन आनंद ने 'नीचा नगर' कामगारों और मालिकों के संघर्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया था। कॉन (फ्रांस) जैसे महत्त्वपूर्ण फिल्म समारोह में इस फिल्म को पुरस्कार भी मिला था। इसी प्रकार ख्वाजा अहमद अब्बास की 'धरती के लाल' में सामाजिक यथार्थ का अभूतपूर्व चित्रण हुआ था।

श्याम बेनेगल के सिनेमा की विषयवस्तु

हिन्दी सिनेमा मे विचारधारा की बात थोड़ी अटपटी ही आपको लग सकती है क्योकि ज़्यादातर फिल्में मसाला और मनोरंजन के मिश्रण से बनी हुई हमे दिखती है। लेकिन यह भी सच है कि मनोरंजन के तमाम सीढियां चढ़ने के बावजूद और कला-शिल्प की आरोह-अवरोहों के बावजूद सिनेमा ने पिछले आठ दशकों में सामाजिक मकसद को भी एक हद तक पूरा करता हुआ महसूस होता है। फूहड़ से फूहड़ फिल्म में भी कोई एक दृश्य मिसाल की तरह बन जाता है और बेहद व्यावसायिक मसाला फिल्म में भी लेखक अपनी विचारधारा उसी तरह पेश कर देता है। 1930 में, जब आजादी का आंदोलन जोर पकड़ चुका था व्रत नाम की एक फिल्म का मुख्य पात्र महात्मा गांधी जैसा दिखता था और लोगों से सच्चरित्रता की बातें करता था और इसी वजह से ब्रितानी सरकार ने इस फिल्म को बैन कर दिया। ऐसी ही घटना 21वीं सदी को शुरुआत मे भी हमे देखने को मिलती है। सन 2000 मे जब्बार पटेल की फिल्म डॉ बाबा साहब अम्बेकर को 14 साल के लिए बैन किया जाता है फिर यह फिल्म दूरदर्शन मे दिखाई भी जाती है तो रात के वक़्त। हालांकि इस फिल्म की समीक्षकों ने तीखी आलोचना की। जब्बार पटेल की 'डा बाबासाहब अंबेडकर' फिल्म सिर्फ एक मनोरंजन हैं। इसमें ऐसा कुछ खास नही जिससे हमे कुछ सीखने को मिले और इसमे खास बात तो यह हैं कि इस फिल्म में बाबासाहब अंबेडकर के जीवन के सच्चे पहलू और संघर्ष को नही दिखाया गया। उल्टा बाबासाहब अंबेडकर को खलनायक साबित करने की कोशिश की गई थी।

1950 में बंगाल में नये सिनेमा का दौर शुरु हुआ था और उस सिनेमा ने कई मायनों में एक आर्टिकुलेट मध्यम वर्ग, जो बहुसंख्यक नहीं बल्कि अल्पसंख्यक था की रुचि को दर्शाया। उसकी जो सामाजिक चिंताएं थीं, वो फिल्मों में प्रतिबिंबित होने लगीं। उसे समानांतर सिनेमा कहा जाने लगा, इस सिनेमा के अग्रणी निर्देशक थे सत्यजीत रे। श्याम बेनेगल साहब उनसे काफी प्रभावित हुए 1973 में श्याम बेनेगल ने अपनी पहली फ़िल्म बनायीं, नाम था "अंकुर "। अंकुर के बाद " निशांत" " मंथन " "भूमिका" " त्रिकाल" , जैसी फिल्में बनाई इन फिल्मों के कलाकार FTII और NSD से निकले, मंझे हुए लोग जैसे शबाना आज़मी , स्मिता पाटिल , नसीरुद्दीन शाह , ओमपूरी , कुलभूषण खरबंदा और अमरीश पूरी थे।

सत्तर के दशक की शुरुआत में एक ओर तो अमिताभ का उदय हुआ वहीं दूसरी ओर समांतर सिनेमा का। लोग अमिताभ को गुस्सैल नौजवान की भूमिका को एक सामाजिक चेतना के तौर पर स्वीकार करते हैं। जंजीर का गुस्सेवर पुलिस इंस्पैक्टर हो या दीवार का नाराज़ गोदी मज़दूर, या फिर त्रिशूल का बदला भंजाने पर उतारु नौजवान। इन फिल्मों को भले ही दर्शक सामाजिक चेतना के चश्मे से स्वीकार्य करें किन्तु यह फिल्मे घोर व्यावसायिक थी। गौर करें तो, तीनों ही फिल्मों का नायक अपने परिवार का बदला ले रहा होता है, यह बात अलग है कि किरदार के निजी अनुभव आम जनता से मेल खाते होंगे बनिस्बत इसके, अर्धसत्य के ओम पुरी के किरदार का गुस्सा अमिताभ के किरदारों से गुस्से से कहीं ज्यादा वैचारिक और सामाजिक चिंता से उपजा है। उसी दौर के समांतर सिनेमा में वामपंथी विचारधारा भी अधिक मुखर हुईं। अंकुर, पार, निशांत अंकुश और

आक्रोश जैसी फिल्में इसी वैचारिक संघर्ष को पेश करती हैं। श्याम बेनेगल की फिल्म निशांत में रुख्मिनी की कहानी के माध्यम से कई शताब्दियों से होते आ रहे नारी उत्पीड़न का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। 'निशांत' कान और लंदन फिल्म समारोह में प्रदर्शित होने के बाद मेलबोर्न फेस्टिवल में गोल्डन फ्लेम पुरस्कार से सम्मानित की गई। विश्व फिल्म पत्रिका ने इसे सर्वश्रेष्ठ फिल्म, पटकथा और श्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री का पुरस्कार दिया। फिल्म में गिरीश कर्नाड, अमरीश पुरी, अनंत नाग और शबाना आजमी की प्रमुख भूमिकाएँ थीं।

2008 में आई फिल्म 'वेलकम टू सज्जनपुर' श्याम बेनेगल की दूसरी कॉमेडी फिल्म थी। इससे पहले 1975 में 'चरणदास चोर' बना चुके थे, 'वेलकम टू सज्जनपुर में उन्होंने सीधे-सीधे लोगों के जीवन के माध्यम से हास्य को परोसा और उनके सुख दुःख को उसी रूप में दिखाया। पत्र लिखने वाले एक डाकिया की भूमिका में श्रेयस तलपडे खूब जमते है। आगे चलकर उन्होंने 'वेल्डन अब्बा' बनाई इसे भी लोगों ने खूब पसंद किया। इस फिल्म को अपने सामाजिक भ्रष्टाचार के विषय के लिए राष्ट्रिय अवार्ड दिया गया।

फिल्मों के इतर वह जीवन में बेहद ही साधारण और स्पष्ट व्यक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। मुंबई में पत्नी निरा बेनेगल और बेटी प्रिय जो की एक फैशन डिजाइनर हैं के साथ अपनी सिनेमाई सोच को हमेशा नए आयाम देने के लिए कार्यरत रहते हैं। बेनेगल ने फीचर फिल्मों के अलावा short films, डॉक्युमेंट्री, दूरदर्शन के लिए भारत एक खोज जैसे अन्य सफल प्रयास भी किये हैं दर्शक वर्ग के लिए। श्याम को 1976 में पद्मश्री और 1961 में पद्मभूषण सम्मान दिये गये। 2007 में वे अपने योगदान के लिये भारतीय सिनेमा के सर्वोच्च पुरस्कार दादा साहब फाल्के पुरस्कार से नवाज़े गये। सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फीचर फिल्म के लिये राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार पाँच बार जीतने वाले वे एकमात्र फिल्म निर्देशक हैं। उनके सिनेमा को देखते हुए आपको ये भी महसूस हो सकता है कि आप कोई कविता पढ़ रहे हैं और वो अभी-अभी आपकी नज़रों के सामने साकार हो रही है। श्याम बेनेगल अपनी उम्र के समकालीन निर्देशकों में सबसे ज्यादा सक्रिय निर्देशक हैं।

व्यावसायिक दौर से उदारीकरण तक का बेनेगल सिनेमा

भारतीय सिनेमा में फिल्मों की दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुई हैं। एक मुख्य धारा की फिल्में हैं जिन्हें व्यावसायिक (कमर्शियल) अथवा लोकप्रोय सिनेमा कहा जाता है जिनका महत्त्व व्यापारिक दृष्टिकोण से अधिक होता है। इन फिल्मों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में होता है और ये लोगों का भरपूर मनोरंजन भी करती हैं। इन फिल्मों का प्राण तत्व गीत और संगीत होते हैं। इनमें हल्की-फुल्की हास्य एवं विनोदप्रधान फिल्मों की भरमार है। ये विनोदपूर्ण फिल्में भी अपने साथ कोई संदेश लेकर आती हैं। इस श्रेणी में बासु चटर्जी, बासु भट्टाचार्य, अमोल पालेकर की फिल्में लोकप्रिय रहीं हैं। पारिवारिक मनमुटावों का समाधान खोजने वाली और स्त्री-पुरुष संबंधों की व्याख्या करने वाली फिल्में इनमें प्रमुख हैं। 'आनंद, बावर्ची, चुपके- चुपके, पिया का घर, अभिमान, नमक हराम, गोलमाल, रजनी गंधा, छोटी सी बात' आदि आती हैं। 'ताराचंद बड़जात्या' ने राजश्री पिक्चर्स के बैनर तले अनेक घरेलू - पारिवारिक प्रसंगों पर आधारित बहुत सुंदर विनोदपूर्ण उद्देश्यप्रधान फिल्में बनाईं जो संदेशात्मक और सुधारवादी दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। 'आरती, नदिया के पार, गीत गाता चल, दोस्ती, दुल्हन वही जो पिया मन भाए, चितचोर, मैं तुलसी तेरे आँगन की' आदि फिल्में पारिवारिक मूल्यों को बल प्रदान करने वाली फिल्में हैं। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सूरज बड़जात्या ने 'मैंने प्यार किया, हम आपके हैं कौन, विवाह, मैं प्रेम की दीवानी हूँ', आदि फिल्मों का निर्माण किया। ये फिल्में पूरी तरह पारिवारिक मनोरंजन से भरपूर किन्तु भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं की पक्षधर फिल्में हैं।

श्याम बेनेगल का निर्देशकीय करियर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। सत्तर और अस्सी के दशक में उन्होंने 'अंकुर' और 'निशांत' जैसी विद्रोही तेवर वाली फिल्मों का निर्देशन किया। इसके बाद वे 'कलयुग' तथा 'त्रिकाल' जैसी मध्यमार्गी फिल्मों की ओर लौटे, जिनमें प्रयोगवाद था। पिछले बरसों में 'मम्मो', 'सरदारी बेगम' और 'जुबैदा' जैसी फिल्मों का निर्देशन किया। इन्हें सार्थक लोकप्रिय सिनेमा के नाम से पुकारा गया।

श्याम बेनेगल का निर्देशकीय करियर

70 का दशक	80 का दशक	90 का दशक	90 का दशक
1978 जुनून	1988 भारत एक खोज	1999 समर	2008 वेल्कम टू सज्जनपुर
1978 कोन्दुरा	1986 यात्रा दूरदर्शन धारावाहिक फ़िल्म	1996 सरदारी बेगम	2005 नेताजी सुभाष चन्द्र बोस
1977 भूमिका	1985 त्रिकाल	1994 मम्मो	2001 ज़ुबेदा
1976 मंथन	1983 मंडी	1993 सूरज का सातवाँ घोड़ा	2000 हरी भरी
1975 निशांत	1982 आरोहण	1991 अंतर्नाद	
1974 अंकुर	1981 कलयुग		

बेनेगल खुद मानते है कि हरेक फिल्म अपने-अपने समय को दर्शाती हैं और उस हिसाब से बनती हैं । फिल्में स्थानीय पसंद को दर्शाती हैं । फिल्म अखबार की तरह ही हैं, आज का जो अखबार है, वो बहुत ही ताज़ा लगता है और कल का जो अखबार है वो बहुत ही बासी । जब आप कोई फिल्म बनाते हैं तो वो रुचि की स्थानकता को दिखाती है । जैसे-जैसे लोगों की रुचि बदलती है, उनका नज़रिया, उनके जुड़ाव और आकांक्षाएं बदलती हैं, उसी तरीके से फिल्में भी बदलती रहती हैं ।

बंगाल में 1950 में और हिंदी में 1970 के आसपास नये सिनेमा का दौर शुरु हुआ था और उस सिनेमा ने कई मायनों में एक आर्टिकुलेट मध्यम वर्ग, जो बहुसंख्यक नहीं बल्कि अल्पसंख्यक था; की रुचि को दर्शाया । उसकी जो सामाजिक चिंताएं थीं, वो फिल्मों में प्रतिबिंबित होने लगीं । अब उस मध्यम वर्ग की चिंताएं, उसके सरोकार ही बदल गए हैं इसीलिए इस किस्म की फिल्मो को कोई देखने नहीं आता है ।

स्वर्गीय इंदिरा गाँधी ने श्याम बेनेगल के बारे में कहा था कि उनकी फिल्में मनुष्य की मनुष्यता को अपने मूल स्वरूप में तलाशती हैं । इस प्रतिक्रिया का आधार था एक वृत्तचित्र नेहरू-। इसके निर्देशक थे श्याम बेनेगल । मजे की बात है कि इन्हीं बेनेगल ने आपातकाल के दौरान श्रीमती गाँधी की नीतियों की तीखी आलोचना की थी ।

देश के प्रमुख समीक्षक चिदानंद दासगुप्ता ने अपने एक लेख में कहा है कि अगर सत्यजीत राय की फिल्में टैगोर के प्रबोधन का चित्रण करती हैं, तो श्याम बेनेगल की फिल्मों में हम नेहरू के भारत को देख सकते हैं, क्योंकि लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता, अवसर की समानता, मानव अधिकार और नारी अधिकार आदि मामलों में श्याम बेनेगल ने ही नेहरू की सोच को फिल्मों में प्रतिस्थापित किया । हिंदी फिल्मों में सामाजिक दृष्टि से इतना सचेत और जागरूक दूसरा कोई फिल्मकार शायद नहीं है ।

श्याम बेनेगल की फिल्में अपने राजनीतिक-सामाजिक वक्तव्य के लिए जानी जाती हैं। श्याम के शब्दों में 'राजनीतिक सिनेमा तभी पनप सकता है, जब समाज इसके लिए माँग करे। श्याम अपनी फिल्मों से यही करते आए हैं। अंकुर /मंथन /निशांत /आरोहण / समर जैसी फिल्मों से वे निरंतर /भरी-हरी /सुस्मन समाज की सोई चेतनाको जगाने की कोशिश करते रहे । भारत में वे समानांतर सिनेमा के प्रवर्तकों में से एक हैं, जबकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उन्हें नई धारा के सिनेमा का ध्वजवाहक माना जाता है ।

नई ज़िम्मेदारी

केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड में सुधार पर (सीबीएफसी) गौर करने के फिल्म निर्मातानिर्देशक श्याम बेनेगल के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया है । सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के निर्णय का अनुपम खेर, मुकेश भट्ट और अशोक पंडित ने स्वागत किया है । समिति अगले दो महीने में अपनी रिपोर्ट सौंपेगी । इस समिति में फिल्मनिर्माता राकेश ओमप्रकाश मेहरा, विज्ञापन निर्माता पीयूष पांडेय, फिल्म समीक्षक भावना सोमाया, प्रबंध निदेशक, राष्ट्रीय फिल्म विकास परिषद नीना लाठ गुप्ता और संयुक्त सचिव संजय मूर्ति (फिल्म) भी होंगे ।

इसी संदर्भ में निर्माता निर्देशक महेश भट्ट ने कहते है कि , "मैं सरकार की ओर से उठाये गए इस कदम का स्वागत करता हूं कि उसने भारत में फिल्म प्रमाणन के आगे के रास्ते के लिए मिस्टर बेनेगल जैसे कद के व्यक्ति के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया । मेरा मानना है कि यह एक बहुत ही सकारात्मक और अच्छा कदम है क्योंकि श्री बेनेगल के पास सिनेमा के मामले में काफी सम्मान एवं ज्ञान है" ।

पूर्व में सेंसर बोर्ड का नेतृत्व कर चुके खेर ने कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित बेनेगल की नियुक्ति की प्रशंसा की । उन्होंने कहा, "सरकार ने एक शानदार निर्णय किया हैयह बिल्कुल सही समय है कि ऐसी कुछ . चीज हुई है और इससे अच्छा और कुछ भी नहीं हो सकता था कि इसका नेतृत्व श्याम बेनेगल करें । उन्हें अंतरराष्ट्रीय सिनेमा की समझ है और राष्ट्रीय स्तर पर उन्होंने कई पुरस्कार जीते हैं."

भारतीय सिनेमा मे सेंसरशिप को लेकर ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि किसी कमेटी का गठन हुआ हो। में मुगदल कमेटी बनाई गयी थी उस कमेटी 1982 ने बोर्ड और मंत्रालय को कुछ सुझाव भी दिये थे वो आज तक कागजों में ही सिमटे हुए है ऐसे मे बेनेगल कमेटी की रिपोर्ट यह जरूर बताएगी कि क्या उन दिनों सेंसर बोर्ड को सुझाए गए विंदु सही थे । अगर सही थे तो हम इतना पीछे क्यों चल रहे है । दुनिया के अन्य देशों मे सेंसरशिप को लेकर उनका कानून काफी सक्रिय भूमिका में है और भारतीय सेंसरबोर्ड3 -कैटेगरी में ही 4 -बंधा हुआ है वो भी ठीक से लागू नहीं हो पाता। समय समय पर सेंसर बोर्ड सवालों के घेरे मे खड़ा हुआ हमे दिखता है।

सामाजिक सरोकारों से कितना दूर कितना पास हमारा सिनेमा विश्लेषण -:

जिस दौर मे श्याम बेनेगल अंकुर निशांत और मंथन जैसी फिल्में बना रहे थे उस समय के सामाजिक परिदृश्य तो देखे तो पाते है कि इस देश की फीसदी 85 आदिवासी ,दलित) आबादी, पिछड़ेंगरीबी और (छूआछूत जैसी सामाजिक बीमारी से जूझ रहे थे । श्याम बेनेगल इन्ही विंदुओं पर अपने सिनेमा को सिमेटना भी चाहते थे। आज़ादी के बाद महात्मा गांधी ने गाँव की तरफ मुड़ने का जहां आह्वान किया वही बाबा साहब अंबेडकर कहते थे कि जातिवाद की मुख्य जड़ें गांवों मे

ही है इसीलिए शहरों की तरफ आयेंशिक्षित हो ,, संघर्ष करें का नारा दिया । इसके वावजूद आज भी देश कि फीसदी आबादी गांवों मे ही जीवन यापन कर रही 70 है । हालांकि मौजूदा सरकार ने गांवों को ही शहर बनानेकी ओर प्रयास करना शुरू किया है । यहाँ बड़ा सवाल यह है कि क्या भारत ने जातिवाद से मुक्ति पा ली है । क्या श्याम बेनेगल कि फिल्मों का प्रभाव सामाजिक स्तर पर पड़ा है ।

भारत की फीसदी आबादी फिल्मों और 85 टेलीविज़न से अनुपस्थित क्यों है? यह सवाल उठाना अपने आप में देशद्रोही करार देने वाला भी हो सकता है । यह (देश के मौजूदा कई मुद्दों को उठाकर देखें तो) सवाल इसीलिए भी जायज है क्योकि जिस देश मे सिनेमा पश्चिम के सिनेमा की बराबरी का सपना देखता है वही भारतीय सिनेमा पश्चिमी सिने विमर्श पर अपना रुख साफ नहीं करता ?

सिनेमा तो सिनेमा यहाँ की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति भी कुछ ठीक नहीं हैपश्चिमी देशो ने , भारत में उस ? हाशिये की अस्मिताओं को कैसे देखा है तरह के सवालों पर बात करने से पहले ही लोग इस बात का पूर्वग्रम कर लेंगे की इन्हे यहाँ भी आरक्षण चाहिए ।

आपको बता दें कि हॉलीवुड हर साल अपनी डायवर्सिटी रिपोर्ट जारी करता है जिसमें वह बताता है कि हॉलीवुड में हर साल कितने महिला निर्देशक है कितने पुरुष , कितने अश्वेत है कितने श्वेत,कितने एशियाई है कितने स्पेनिक,इन सभी बिन्दुओं पर बात करते हुए वो शर्माते भी नहीं है । हॉलीवुड डायवर्सिटी रिपोर्ट का अध्ययन कर यह भी जाना जा सकता है कि उनके यहाँ कितने अभिनेता अभिनेत्री किस समुदाय से है । अश्वेत और निचले स्तर के लोगो पर कितनी फिल्में बनी ।

भारतीय सिनेमा के संदर्भ में क्या आप कल्पना भी कर सकते है कि ऐसा होगा ? भारत के तमिल सिनेमा मे कुछ वर्षों मे बदलाव जरूर आया है । पांडिचेरी विश्वविद्यालय में सिनेमा संगोष्ठी पर मीडिया चिंतक दिलीप सी मण्डल तमिल सिनेमा की तारीफ करते हुए कहते है कि तमिल फिल्में अब दूसरा उदाहरण पेश करती है । उनके यहाँ खलनायकों के नाम सुब्रमण्यम या इसी तरह के तमिल नाम हैं और वंचित तबके से आ रहे लोग मुख्य किरदार निभा रहे हैं । लेकिन सामाजिकता की मिशाल पेश करता तमिल सिनेमा ,अब लोगों को अखरने भी लगा है । इसी मुद्दे को लेकर द हिन्दू मे एक भारद्वाज साहब ने अफसोस भी जताया वो लिखते है कि यह किस किस्म का भेदभाव चल रहा है, तमिल फिल्मों मे जो नायक है, मुख्य भूमिकाएँ हैं सकारात्मक चरित्र ,हैंवें वंचित समुदाय से , आतेहैं और खलनायक ब्राह्मण और वर्चस्वशाली समुदायों से । इस तरह के उदाहरण आपको हिन्दी सिनेमा मे नही मिलेंगे । जरूर नहीं मिलेंगे भारद्वाज जी । क्योकि हिन्दी सिनेमा अब उत्पाद बेच रहा है सामाजिक सरोकारो से उसका नाता आप जैसे समीक्षकों ने ही तुड़वाया है ।

बाबा साहब ने जब राष्ट्र की परिभाषा यूरोपीय चिंतक अर्मेस्ट नेनान से ली । अर्मेस्ट नेनन अपनी परिभाषा में बताते हैं कि कोई अराष्ट्रराष्ट्र तब है जब , ,वह साथ मे सुखी साथ मे दुखी और साथ मे सपने देखता है । **शेयर जॉय, शेयर शॉरो, शेयर ड्रीम्स।**

दिलीप मंडल कहते है कि दलित आदिवासी मुद्दों पर बनी फिल्मों पर आलोचनात्मक ढंग से बात होनी चाहिए । जैसे सुजाता, अछूत कन्या, अंकुर, लगान, राजनीति जैसी अन्य फिल्मों में दलित का किसी न किसी रूप में चित्रण आया । लेकिन क्या ये बाबा साहब जिनके लिए सामाजिक लड़ाई लड़ रहे थे वो दलित हैं ? नहीं । वें महात्मा गांधी के हरिजन हैं । वें शसक्त दलित नहीं है । लड़की दलित होगी लड़का ब्राह्मण होगा । अंकुर फिल्म का चरित्र किष्टकृया आयातित है । फिल्म के अंतिम शॉट मे जो बच्चा पत्थर फेकता है और पर्दा लाल हो जाता है वो दलित का बच्चा ही नहीं है । दरअसल वह उच्चजातीय सूर्या का बच्चा है ।

क्यो नहीं हिन्दी सिनेमा में आदिवासी चरित्र को झिंगालाला की जगह इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय का कुलपति प्रो. कट्टीमनी दीखता । क्योकि नहीं आदिवासी के रूप में जेएनयू नई

दिल्ली के कंप्यूटर विज्ञान केंद्र के अध्यक्ष और एम्स के आपातकालीन विभाग के एल आर मुन्नू दिखते । आपने हमेशा से आदिवासी की संस्कृति को तोड़ मरोड़ कर पेश किया और सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हुआ बता दिया । समीक्षकों ने भी वैसा ही लिखा जैसा कि फिल्म निर्माता चाहता है । क्योकि फिल्म में पैसा भी आपका, लोग भी आपके तो कहानी भी आपकी ही होगी न । 21 वीं सदी के सूचना प्रोद्योगिकी के युग में हमें अभी भी उम्मीद है सामाजिक मुद्दों, सामाजिक स्तर पर सशक्त लोगो की कहानी हिन्दी सिनेमा के पर्दे पर देखने की ।

संदर्भ

हिन्दी किताबें

1. मीणा,प्रमोद, समय से संवाद हिन्दी सिनेमा : दलित आदिवासी विमर्श (सम्पादित 2016),अनन्य प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 27-34
2. प्रगतिशील वसुधा, त्रैमासिक पत्रिका, सिनेमा विशेषांक, हिंदी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक ।
3. दास विनोद,भारतीय सिनेमा का अंत:करण (2012) मेधा बुक्स, नई दिल्ली
4. पारख जवरीमल्ल, लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ (2001) अनामिका पब्लिसर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
5. जोशी ललित,बॉलीवुड पाठ :- विमर्श के संदर्भ में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
6. बसु आचार्य डॉ॰ दुर्गा दास, भारत का संविधानएक परिचय-, नौवा संस्करण पुनर्मुद्रण 2006, लेक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ नागपुर ॰

Journals

7. Robertson geoffery, The future of film censorship, british journals of law and society, vol.7,no.1 (summer,1980)pp.78-94,published by willey.
8. noorani A. g., films and free speech, economics and political weekly, vol.43,no.18(may3-9,2008),pp.11-12.
9. noorani A. g., films censorship, economics and political weekly, vol.18,no.23(jun4 1983),p.1000.
10. howard Jack, the film in india, the quarterly of film radio and television,vol.6,no.3(spring.1952)pp. 217-227.university of California press.
11. hilton r.h., censorship in india, past and present,no.77(nov.1977)p.142. oxford university press.
12. benegal Shyam & sen geeti ,issues and censorship in india,india international centre quarterly,vol.24,no.2/3,crossing boundary (mansoon1997),pp.284-297.

इंटरनेट लिंक्स

13. http://www.bbc.com/hindi/entertainment/2009/06/090628_benegal_va_tc2.shtml08 2016 अप्रैल 10 : 30pm
14. http://hindi.webdunia.com/bollywood-focus/%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4 08 2016 अप्रैल 10: 30pm
15. http://moviemontage.blogspot.in/ 11 10 2016 अप्रैल: 30am

16. http://hindipremi.blogspot.in/2013/10/blog-post_16.html 2016 अप्रैल 10 10: 30pm
17. http://raviwar.com/baatcheet/b2_shyam_benegal_interview.shtml अप्रैल 10 08 2016: 30pm
18. http://chavannichap.blogspot.in/search?updated-max=2008-06- अप्रैल 10 08 2016: 30pm 20T18:22:00%2B05:30&max-results=4&reverse-paginate=true&start=1179&by-date=false06 2016 अप्रैल 10 : 20pm
19. http://mihirpandya.com/2012/11/anhey-ghorey-da-daan/ 2016 अप्रैल 10 08: 30pm
20. http://www.jansatta.com/sunday-column/jansatta-sunday-column-cinema-change-trend-of-hindi-cinema/37939/08 2016 अप्रैल 12 : 30 pm
21. http://www.sahityakunj.net/index.htm 10 2016 अप्रैल 10: 30pm
22. http://www.hindisamay.com/content.aspx?id=2009 2016 अप्रैल 10 : 30pm
23. http://www.essaysinhindi.com/essays/%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%87%E0%A4%AE%E0%A4%BE-11 2016 अप्रैल 15 : 10 am
24. http://www.apnimaati.com/2015/10/blog-post_42.html12 2016 मई 3 : 10 am
25. http://hindi.filmibeat.com/topic/%E0%A4%95%E0%A4%B2%E0%A4%BE-%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%87%E0%A4%AE%E0%A4%BE/07 2016 अप्रैल 15 : 30 pm
26. http://www.sahityakunj.net/LEKHAK/M/MVenkateshwar/Hindi_filme_aur_samajik_sarokar_Alekh.htm मई 3 12 2016: 10am
27. http://www.srijangatha.com/%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%87%E0%A4%AE%E0%A4%BE-23Apr201612 2016 मई 3 : 10am

संपर्क : शोध छात्र, प्रदर्शनकारी कला विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा महाराष्ट्र, 09616730363 (mjaisal2@gmail. Com)